⇒ कबीर की वाणी में प्रेम का तत्व-
योग और भक्ति का समन्वय :-
कबीरदास की साधना योग से भक्ति तक
फैली हुई है। कबीर योग की राह चले थे
बाहर और भीतर को जोड़ने का उद्देश्य लेकर
लेकिन देखा कि यह योग तो ब्रह्म चक्र साधना
के रूप में आत्मान्वेषण है। यह काया में ही सोये
हुए ब्रह्म का दीदार है। यह हमें भीतर से तो
जोड़ता है लेकिन बाहर से काट देता है। भीतर
से यह जुड़ना भी अनन्त नहीं है क्योंकि समाधि
टूटते ही गगन और पवन का संबंध टूट जाता
है और जीवात्मा पूर्वदशा में पहुँच जाती है।
कबीर गगन और पवन के बीच के टूटे हुए
संबंध को भावनात्मक स्तर पर जोड़ने के लिए

Scanned with CamScanner

ही रामानंद से भक्ति-रसायन लेते हैं। उन्होंने आठवें चक्र के रूप में एक भक्तिप्रेरित सुरति कमल की कल्पना की। यह सुरति कमल प्रेम कमल है जो समाधि भंग के बाद भी कुण्डलिनी अर्थात् जीवात्मा में आध्यात्मिक विरह का भाव बनाए रखती है। इससे स्पष्ट है कि कबीर ने न तो योग को छोड़कर भक्ति अपनायी और न ही भक्ति को छोड़कर योग। उन्होंने ~~भक्ति~~ योग की भूमि में ही भक्ति का बीज डालकर अपनी साधना लता अंकुरित की।

सिद्धों-नाथों के पास भक्ति नहीं थी लेकिन कबीर के पास थी इसलिए कबीर सिद्धों-नाथों से भिन्न हैं। वे सिद्धों-नाथों से इसलिए भी भिन्न हैं कि वे काया में तीर्थ देखते हैं और उसके बाहर भी। जबकि सिद्ध और नाथ काया में ही तीर्थ एवं पिंड में ही ब्रह्मांड देखने की बात करते थे। सगुणमार्गी द्वैतवादी हैं चाहे उनका द्वैत विशिष्ट या विलक्षण क्यों न हो। जबकि कबीर सच्चे अद्वैतवादी हैं। इसकारण वे सगुण भक्तों से भी भिन्न हैं।

कबीर के ब्रह्म द्वैताद्वैत विलक्षण हैं। जीव भी वे स्वयं हैं और जगत भी स्वयं हैं। यह सारा संसार उसी एक का फैलावा है। कबीर उस एक को कई नामों से पुकारते हैं - राम, रहीम, केशव, करीम, रब माधव आदि। चूँकि उनका ब्रह्म अद्वैत है, अमूर्त है इसलिए वह किसी एक नाम या विशेषण से विभूषित नहीं हो सकता। कबीर उसे अनेक संबंधों में बांधकर समझने की

कोशिश करते हैं ताकि उसकी इयत्ता को समझ सकें। कभी वे उसे स्वामी कहते हैं, कभी प्रियतम और कभी वात्सल्य भाव को लेकर माँ और पुत्र का स्नेहिल संबंध बनाते हैं। संबंध का रूप चाहे जो हो लेकिन उसमें दास्य भाव की अनिवार्य स्वीकृति है। कबीर के आदर्श सती और शूर दास ही हैं क्योंकि ये दूसरों के लिए जीते हैं। सती तो अपने जीवन में ही प्रिय की मृत्यु को स्वीकार कर लेती है। शूरवीर पुर्जा-पुर्जा कट मरते हैं लेकिन मैदान नहीं छोड़ते किसी अन्य के लिए। कबीर कहते हैं:

++ 'सूरा सोई सराहिए लड़ै धनी के हेत
पुर्जा-पुर्जा कटि मरै तउ न छाड़ै खेत'

कबीर की भक्ति का अर्थ है प्रेम। उनकी भक्ति या प्रेम आचार प्रधान नहीं तत्त्व प्रधान है। वे आडंबर पर नहीं भाव पर बल देते हैं। वे कहते हैं:

'भाव बिना जो भगति है सो निज दंभ विचार'

कबीर के प्रेम में वासना का नामोनिशान नहीं है। यहाँ प्रेम-कर्म तो वीरों का कर्म है+ इन्द्रियों से लगातार जूझना पड़ता है, चारपायी पर कराहने या एक कोने में प्रेमिका के साथ पड़े रहने से यह प्रेम साधित नहीं होता। इस प्रेम के लिए तो पहले अपनी निजता, काम-वासना गँवानी होती है। आत्म का विसर्जन ही प्रेम है।

++ 'सूरा सो पहिचानियें लरैं दीन के हेत।
पुरजा पुरजा कटि मरैं कबहुँ न छाँड़ै खेत।'